आगम बोध

भाग -3

कर्त्तव्याष्टक

आतम हित ही करने योग्य, वीतराग प्रभु भेजने योग्य ।
सिद्ध स्वरुप ही ध्याने योग्य, गुरु निर्ग्रन्थ ही वंदन योग्य ॥1॥

साधर्मी ही संगति योग्य, ज्ञानी साधक सेवा योग्य ।
जिनवाणी ही पढ़ने योग्य, सुनने योग्य समझने योग्य ॥2॥

तत्त्व प्रयोजन निर्णय योग्य, भेद-ज्ञान ही चिंतन योग्य ।
सब व्यवहार हैं जानन योग्य, परमारथ प्रगटावन योग्य ॥3॥

वस्तुस्वरुप विचारन योग्य, निज वैभव अवलोकन योग्य ।
वस्तुस्वरुप ही अनुभव योग्य, निजानंद ही वेदन योग्य ॥4॥

अध्यातम ही समझने योग्य, शुद्धातम ही रमने योग्य ।
धर्म अहिंसा धारण योग्य, दुर्विकल्प सब तजने योग्य ॥5॥

श्री जिनधर्म प्रभावन योग्य, ध्रुव आतम ही भावन योग्य ।
सकल परीषह सहने योग्य, सर्व कर्म मल दहने योग्य ॥6॥

भव का भ्रमण मिटाने योग्य, क्षपक श्रेणी चढ़ने योग्य ।
तजो अयोग्य करो अब योग्य, मुक्तिदशा प्रगटाने योग्य ॥7॥

आया अवसर सबविधि योग्य, निमित्त अनेक मिले है योग्य ।
हो पुरुषार्थ तुम्हारा योग्य, सिद्धि सहज ही होवे योग्य ॥8॥

आगम बोध

भाग–तृतीय

संकलन-संपादन

(डॉ.) मनोज कुमार जैन, जबलपुर

M.Sc., M.A., Ph.D.

प्रकाशक

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

जबलपुर (म.प्र.)

कृति - आगम बोध पाठमाला भाग-3
संस्करण- प्रथम, मंगलवार, 6 मई 2015
षष्ठम् बाल संस्कार आवासीय शिक्षण शिविर पर प्रकाशित
आवृत्ति - 500 प्रतियां

अनुक्रम

क्रम	नाम	पृष्ठ
1.	देवस्तुति	1
2.	हमारे नवदेवता	3
3.	इन्द्रियाँ	7
4.	आत्मा और परमात्मा	9
5.	प्रयोजनभूत तत्त्व	13
6.	हमारे तीर्थक्षेत्र	16
7.	सम्यक्दर्शन	19
8.	द्रव्य-गुण-पर्याय	22
9.	कथा खंड	25
10.	पद्य खंड	30

प्राप्ति स्थल -
श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन मंदिर
स्वाध्याय भवन, पायलवाला मार्केट
बड़ा फुहारा, जबलपुर (म.प्र.)
फोन : 0761-2401108 मोबा. 09893095524

पाठ 1

देव स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस ।
ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास ।।

जीवों की हम करुणा पालें झूठ वचन नहिं कहें कदा ।
परधन कबहुं न हरहूं स्वामी, ब्रम्हचर्य व्रत रखें सदा ।।

तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें ।।

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार ।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार ।।

सुख-दुःख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल ।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल ।।

अष्टकरम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय ।
नाम आपका जपें निरंतर, विघ्न शोक, सब ही टल जाये ।।

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा ।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा ।।

हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े ।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण-शरण में आन पड़े ।।

देवस्तुति का अर्थ

यह स्तुति सच्चे देव की है । सच्चा देव उसे कहते हैं जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो । वीतरागी वह है, जो राग, द्वेष से रहित हो और जो लोकालोक के समस्त पदार्थों को एक साथ जानता हो, वही सर्वज्ञ है । आत्महित का उपदेश देने वाला होने से वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी कहलाता है ।

वीतराग भगवान से प्रार्थना करता हुआ भव्य जीव सबसे पहले यही कहता है कि मैं मिथ्यात्व का नाश और सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करूं, क्योंकि मिथ्यात्व का नाश किए बिना धर्म का आरंभ ही नहीं होता है ।

इसके बाद वह अपनी भावना करता हुआ कहता है कि मेरी प्रवृत्ति पांचों पापों और कषायों में न जावे । मैं हिंसा न करूं, झूठ न बोलूं, चोरी न करूं, सदा सन्तोष धारण किए रहूं और मेरा जीवन धर्म के क्षेत्र में लगा रहे ।

हम धर्म के नाम पर फैलने वाली कुरीतियों यथा ग्रहीत मिथ्यात्वादि और सामाजिक कुरीतियों को दूर करके धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सही परम्पराओं का निर्माण करें तथा परस्पर धर्म प्रेम रखें ।

हम सुख में प्रसन्न होकर फूल न जावें और दुख को देखकर घबड़ा न जावें, दोनों ही दशाओं में धैर्य से काम लेकर समताभाव रखें तथा न्याय मार्ग पर चलते हुए निरंतर आत्मबल में वृद्धि करते रहें ।

आठों ही कर्म दु:ख के निमित्त हैं, कोई भी शुभाशुभ कर्म सुख का कारण नहीं है, अत: हम उनके नाश का उपाय करते रहें । आपका स्मरण सदा रखें, जिससे सन्मार्ग में कोई बाधा न आवे ।

हे भगवान । हम और कुछ भी नहीं चाहते हैं, हम तो मात्र यही चाहते हैं कि हमारी आत्मा पवित्र हो जाये और उसे मिथ्यात्वादि पापों रूपी मैल कभी भी मलिन न करे तथा लौकिक विद्या की उन्नति के साथ हमारा धर्मज्ञान निरंतर बढ़ता रहे ।

हम सभी भव्य जीव खड़े होकर हाथ जोड़कर आपको नमस्कार कर रहे हैं, हम तो आपके चरणों की शरण में आ गए हैं, हमारी भावना अवश्य ही पूर्ण हो ।

पाठ 2

हमारे नवदेवता

(नवदेवता परिचय)

णमो अरहंताणं
णमो सिद्धांण णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं ।।

उक्त पंच नमस्कार मंत्र में पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण सुखी अरहन्त व सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है । उनके पश्चात् वीतराग मार्ग पर चलने वाले आचार्य, उपाध्याय व साधु मुनिराजों को नमस्कार किया गया है ।

जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं । अरहंतादिक परमपद होने से इन्हें परमेष्ठी कहते हैं। इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु ये परमेष्ठी कहलाते हैं तथा इनके बताए मार्ग पर चलने से हम भी इनके जैसे बन सकते हैं ।

पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिन चैत्यालय भी हमारे लिए पूज्य हैं। ये सभी मिलाकर नवदेवता कहलाते हैं, जिनका प्रतिदिन दर्शन-पूजन हमारा कर्तव्य है ।

अरहंत परमेष्ठी -

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके अनंतचतुष्टय अर्थात अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख व अनंत वीर्यरूप विराजमान हुए हैं, वे अरहन्त परमेष्ठी है । इनमें तीर्थंकर अरहंतों के 10 केवल ज्ञान के, 14 देवकृत चतुष्टय मिलाकर कुल 46 मूलगुण होते हैं, परंतु वास्तविक मूलगुण तो अनंतचतुष्टय ही हैं, जिनका संबंध आत्मा से है ।

सिद्ध परमेष्ठी -

जो गृहस्थ अवस्था त्यागकर मुनिधर्म साधन द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय प्रगट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गए हैं , लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गए हैं, जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रगट हो गए हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं ।उनके निम्न आठ गुण कहे गए हैं

१. अनंत सम्यक्त्व २. अनंत दर्शन ३. अनंत ज्ञान ४. अगुरुलघुत्व ५. अवगाहनत्व ६. सूक्ष्मत्व , ७. अनंत वीर्य तथा ८. निराबाधत्व

आचार्य परमेष्ठी -

जो सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मुख्यता से मुनिसंघ में प्रधान पद प्राप्त करके मुनिसंघ के नायक हुए हैं तथा मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी-कभी रागांश के उदय से करुणाबुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं ।दीक्षा लेने वाले को योग्य जान दीक्षा देते हैं,अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित विधि से शुद्ध करते हैं, ऐसा आचरण करने और कराने वाले आचार्य कहलाते हैं ।

उपाध्याय परमेष्ठी -

जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर संघ में पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैं तथा जो समस्त शास्त्रों का सार 'आत्मस्वरूप में एकाग्रता है', अधिकतर तो उसमें लीन रहते हैं, कभी-कभी कषायांश के उदय में यदि उपयोग वहां स्थिर न रहे तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते हैं, औरों को पढ़ाते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं । ये मुख्यत: द्वादशांग के पाठी होते हैं ।

साधु परमेष्ठी -

आचार्य उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त साधु मुनिधर्म के धारक है, और आत्म स्वभाव को साधते हैं, बाह्य 28 मूलगुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरंभ और अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान ध्यान में तल्लीन रहते हैं। सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं ।

आचार्य उपाध्याय व साधु ये तीन परमेष्ठी सामान्यपने साधु परमेष्ठी में आते हैं। जो विरागी होकर समस्त परिग्रह का त्याग करके शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म अंगीकार करके अपने को आत्मा रूप अनुभवते हैं, अपने को सर्व सांसारिक कार्यों से दूर रखते हुए सदा ज्ञान ध्यान में तल्लीन रहते हैं, जिनके अशुभोपयोग का अभाव होकर आते हुए शुभोपयोग को जो हेय मानकर शुद्धोपयोग रूप रहते हैं, वे सभी मुनिराज साधु कहलाते हैं।

जिनधर्म -

जो संसार के समस्त दुखों से छुड़ाकर उत्तम मोक्ष सुख में पहुंचा देता है, ऐसा जिनेंद्र देव द्वारा कहा गया वीतरागी धर्म ही जिनधर्म है । वह जिनधर्म सम्यक्दर्शन -ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय रूप एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य शौच, संयम, तप, त्याँग, आकिंचन व ब्रम्हचर्य समेत दशधर्म रूप है ।जिनधर्म ही एकमात्र मुक्तिमार्ग का कारण होने से परम पूज्य है ।

जिनागम -

जिनेंद्र भगवान की देशना रूप जिनवाणी को ही जिनागम कहा जाता है । जिनवाणी वस्तु स्वरूप का प्रकाशन करती है और जीवों के हित की शिक्षा देती है । इसे शास्त्र भी कहते हैं ।यह चार अनुयोगों में विभाजित है ।

जिनचैत्य (जिनप्रतिमा) -

साक्षात् तीर्थंकर या केवली भगवान के अभाव में धातु-पाषाण आदि की तदाकार (तद्रूप) जो रचना की जाती है, उसे जिनचैत्य, जिनबिम्ब या जिन प्रतिमा भी कहते हैं । स्थापना निक्षेप से प्रतिमा में "ये वही भगवान हैं जो पूर्व में थे", ऐसी श्रद्धा होने से प्रतिमा अरहन्त भगवान का रूप धारण कर लेती है । कहा भी है- जिन प्रतिमा जिन सारखी, कही जिनागम मांहि।

जिनचैत्यालय (जिनमंदिर) -

जिनचैत्य अथवा जिनबिम्ब जहां विराजमान होते हैं, उसे जिन चैत्यालय कहते हैं । जिन चैत्यालय को समवशरण, जिन मंदिर, जिनालय, जिनगृह आदि कितने ही शुभ नामों से कहा जाता है। जिनचैत्य तथा जिनचैत्यालय अकृत्रिम (किसी ने बनाये नहीं) एवं कृत्रिम -किसी के बनाये हुए, दो प्रकार के होते हैं । नंदीश्वर द्वीप आदि अकृत्रिम चैत्यालय हैं ।

उपर्युक्त सभी नवदेवता वीतरागता एवं मोक्षमार्ग प्रगट करने हेतु निमित्तभूत होने से हमारे लिए आराध्य हैं । इनमें भक्तिभाव होने से सहज ही पुण्यबंध होता है, तथा दु:खों का क्षय होता है। अत: इनकी भक्ति में उत्साहपूर्वक तत्पर रहना चाहिए।

प्रश्न-

1. पंच परमेष्ठी किन्हे कहते है ?
2. नव देवताओं के नाम बताईये ।
3. अरहंत और सिद्ध परमेष्ठी की परिभाषा लिखिये ।
4. साधु परमेष्ठी का सामान्य स्वरूप बताईये ।
5. जिनमंदिर, जिनप्रतिमा व जिनवाणी में अंतर बताइये ।

पाठ 3

इन्द्रियाँ

परिभाषा- आत्मा को ज्ञान में निमित्त शरीर के चिन्ह विशेष को इंद्रियाँ कहते हैं अथवा, शरीर के जो चिन्ह विशेष संसारी आत्मा को ज्ञान में निमित्त होते हैं, उन्हें इन्द्रियाँ कहते हैं ।

भेद- इंद्रियाँ द्रव्येन्द्रिय व भावन्द्रिय के भेद से दो प्रकार की होती हैं। आँख, नाक, कान आदि रूप शरीर की रचना को द्रव्येन्द्रिय कहा जाता है , तथा आत्मा का प्रगट ज्ञान जो आंख आदि के माध्यम से जानता है, उसे भावेन्द्रिय कहते हैं ।

इंद्रियाँ पांच होती हैं -

1. **स्पर्शन इंद्रिय**- जिसके छू जाने पर हल्का-भारी, रूखा-चिकना, ठंडा-गरम और कड़ा नरम का ज्ञान हो, उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं ।
2. **रसना इन्द्रिय**- खट्टा, मीठा , कड़वा, कषायला और चरपरा रूप स्वाद को जानने में निमित्त रूप जीभ को रसना इंद्रिय कहते हैं ।
3. **घ्राण इन्द्रिय**- सुगंध और दुर्गंध रूप जानने में निमित्त नाक को ही घ्राण इन्द्रिय कहते हैं ।
4. **चक्षु इन्द्रिय**-काला, नीला, पीला, लाल व सफेद आदि रंगों के ज्ञान में निमित्तरूप आंख को ही चक्षुइन्द्रिय कहते हैं।
5. **कर्ण इन्द्रिय**-आवाज के ज्ञान में निमित्त रूप कान को ही कर्ण इंद्रिय कहते हैं ।

इन पांच इद्रियों के अतिरिक्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को मन की भी प्राप्ति होती है । जिसके द्वारा सोचना, विचारना, हित-अहित का निर्णय लेना है । मन को अनीन्द्रिय भी कहा जाता है ।

ध्यान रहे, इन्द्रियों का विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण व शब्द होने से इन्द्रियां केवल जड़ पुद्गल के ज्ञान में निमित्त हैं । इसके अतिरिक्त विषयासक्त जीव को इन्द्रिय भोगों में उलझाने में भी निमित्त हैं, अत: इन्द्रिय ज्ञान तुच्छ है, जो जीव इन्द्रियों को जीतकर अर्थात् विषयासक्ति को छोड़कर इन्द्रियों को जीत कर अपने आत्मा की आराधना करता है, वही जीव भगवान बन जाता है ।इन्हें जीतने वाले को जिन कहा जाता है ।

किस जीव को कितनी इन्द्रियों का संयोग है-

1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक जीवों की एक मात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है।
2. लट, शंख, कृमि आदि जीवों की स्पर्शन व रसना ये दो इन्द्रियां होती हैं ।
3. चींटी, बिच्छू, खटमल आदि जीवों की स्पर्श, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां होती हैं ।
4. मच्छर, मक्खी, भ्रमर, पतंगा आदि जीवों की स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षु ये चार इन्द्रियां होती है ।
5. गाय-बैल, मनुष्य, नारकी, देव आदि जीवों की स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु व कर्ण ये पांच इन्द्रियां होती हैं ।

प्रश्न-

1. जैन किसे कहते है ?
2. इन्द्रियाँ किसे कहते हैं ? वे कितनी है ।
3. इन्द्रियाँ किसको जानने मे निमित्त है ?
4. इन्द्रियाँ मात्र ज्ञान में ही निमित्त है ? समझाइये ।
5. इन्द्रिय ज्ञान तुच्छ क्यों हैं ?

पाठ 4

आत्मा और परमात्मा

प्रभाकर भट्ट– हे गुरुदेव । कृपया समझाइये कि आत्मा का हित किस बात में है ? अनादिकाल से हम दुखी हो रहे हैं । हमारे दु:ख का अभाव कैसे हो सकता है ?

योगीन्दुदेव– हे प्रभाकर भट्ट ! जिसे अपना दु:ख दूर कर सच्चा हित प्रगट करने का उपाय समझने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, निश्चित ही वह भव्य जीव है । हे शिष्य ! यह जीव अपने आत्मा को भूलकर के ही दु:खी हो रहा है, तथा निज आत्मा को पहिचानकर उसमें लीन होकर ही सुखी हो सकता है ।

प्रभाकर भट्ट– हे गुरुदेव ! आत्मा को समझने की विशिष्ट पात्रता क्या है ?

योगीन्दुदेव– जिस प्रकार लोक में अपने रुचिकर विषय को सुनने-समझने और ग्रहण करने में हमारा मन अति उत्साह से प्रसन्न रहता है, अति प्रीतिपूर्वक सर्वस्व समर्पण के साथ हम उसमें एकाकार होने का प्रयास करते हैं। उसी प्रकार, चैतन्य स्वभावी, आनंदमयी अपने आत्मा की बात अति उत्साहपूर्वक अत्यंत प्रीतिभाव से, सर्वस्व समर्पण की भावना से एकाग्रतापूर्वक सुनना ही आत्मा को समझने की पात्रता है । जो जीव ऐसी योग्यता से आत्मा को समझकर उसमें स्थिर होते हैं, वे अल्पकाल में ही संसार दशा से मुक्त होकर परमात्मदशा को प्राप्त होते हैं ।

प्रभाकर भट्ट– हे गुरुदेव ! आत्मा किसे कहते हैं ?

योगीन्दुदेव- ज्ञानानन्द स्वभावी, चैतन्यमय जीव तत्त्व को ही आत्मा कहते हैं । ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्त गुणों का यह अखंड, अभेद पिंड है, तथापि अवस्था (दशा) की अपेक्षा इसके तीन भेद हैं । अर्थात् एक आत्मा ही इन तीन दशाओं में पाया जाता है । ये तीन भेद हैं- 1. बहिरात्मा 2. अन्तरात्मा 3. परमात्मा ।

प्रभाकर भट्ट - हे गुरुदेव ! बहिरात्मा किसे कहते हैं ?

योगीन्दुदेव- जो जीव शरीर को आत्मा मानता है, अन्य पदार्थों में और रागादि विकारी पर्यायों में अपनत्व करता हुआ शरीर की उत्पत्ति तथा शरीर के नाश को अपना जन्म-मरण मानता हुआ संयोगों में सुख-दु:ख की कल्पना करता है, पर द्रव्य का स्वामी कर्ता-धर्ता बनता है, ऐसा जीव ही बहिरात्मा कहलाता है। उसे अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं । बहि:आत्मा=बहिरात्मा अर्थात् जो बाह्य पदार्थों को आत्मा मानता है, अपना मानता है, वह बहिरात्मा है। यह बहिरात्मा- रूप दशा जीव की अनादिकाल से चली आ रही है। इस विपरीत मान्यता के नष्ट हुए बिना धर्म प्रगट होना असंभव है।

प्रभाकर भट्ट- हे गुरुदेव ! कृपया, अन्तरात्मा का स्वरूप भी समझाइये ।

योगीन्दुदेव- जो जीव तत्त्वज्ञान के अभ्यास से भेद विज्ञान प्रगटकर देहादि संपूर्ण पर पदार्थों से पूर्णतया भिन्न अपने ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा को अपनत्व रूप से मानता है, जानता है, इसी की प्रतीति करता है, उसी का अनुभव करता है, वह सम्यकदृष्टि

ज्ञानी आत्मा ही अन्तरात्मा है । अन्त: + आत्मा=अन्तरात्मा अर्थात् जिस जीव ने अपने आत्मा को स्वयं में खोजकर उसे अपनत्व रूप से स्वीकार किया है तथा उसकी आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में भी अपनेपन की मान्यता छूट गई है, उसे अन्तरात्मा कहते हैं । उसके दु:खों का नाश तथा धर्म का प्रारंभ एवं अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हो चुका है । यह अंतरात्मा तीन प्रकार का होता है :-

1. उत्तम अन्तरात्मा 2. मध्यम अन्तरात्मा
3. जघन्य अंतरात्मा

अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित उत्कृष्ट शुद्धोपयोगी क्षीणकषाय मुनि(बारहवें गुणस्थानवर्ती) उत्तम अंतरात्मा हैं। अविरत सम्यक्दृष्टि (चौथे गुणस्थान वर्ती) जघन्य अंतरात्मा है तथा उक्त दोनों के मध्यवर्ती देशविरत श्रावक और मुनिराज (पांचवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) मध्यम अन्तरात्मा हैं।

प्रभाकर भट्ट – कृपया, अब परमात्मा के स्वरूप का भी वर्णन कीजिए ।

योगीन्दु देव– अपने अनादि अनंत ज्ञानानंदमय ज्ञायक स्वभाव रूप भगवान आत्मा में पूर्णतया स्थिर हो जाने से जो पूर्ण वीतरागी, सर्वज्ञ, अनन्तचतुष्टय संपन्न हो गए हैं, वे भगवान परमात्मा कहलाते हैं परम + आत्मा = परमात्मा अर्थात्, परम (उत्कृष्टतम) आत्मतत्त्व जिनकी पर्याय में पूर्णतया प्रगट हो गया है, वे परमात्मा हैं। तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान वर्ती अरहन्त और

सिद्ध भगवान इसी कोटि में आते हैं । एकमात्र यह दशा ही परिपूर्ण स्वतंत्र, स्वाधीन, अतीन्द्रिय आनंदमय दशा है। परमात्मा के दो भेद हैं – 1. श्री अरहन्त भगवान शरीर एवं अघातिया कर्मो का संयोग होने से सकल परमात्मा कहलाते हैं,तथा 2. श्री सिद्ध भगवान शरीर एवं अघातिया कर्मों से सर्वथा रहित होने से निकल परमात्मा कहलाते हैं।

प्रभाकर भट– हे गुरुदेव ! इनमें कौन सी दशा उपादेय है कृपया बतलाइये

योगीन्दुदेव– हे प्रभाकर भट्ट । परमात्मा दशा ही प्रगट करने के लिए एकमात्र उपादेय है, क्योंकि यही हमारे लिए पूर्ण सुखमय और स्वाधीन दशा है। बहिरात्मा संसारमार्गी होने से सर्वथा त्याज्य है और अंतरात्मा हुए बिना परमात्मा नहीं हुआ जा सकता, अत: अंतरात्मा दशा कंथचित उपादेय है । वास्तव में निज भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान व लीनता ही उपादेय है, क्योंकि निजात्मा का आश्रय लेने पर ही बहिरात्मा दशा छूटकर अंतरात्मा दशा प्रगट होती है, तथा आत्मा में पूर्ण लीनता होने पर परमात्म दशा प्रगट हो जाती है। अत: हमें निज आत्मा को पहिचान कर उसी का आश्रय लेना चाहिए ।

प्रश्न-

1. आत्मा किसे कहते हैं ?
2. बहिरात्मा व अंतरात्मा का स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?
3. परमात्मा का स्वरूप बताकर सकल व निकल परमात्मा की परिभाषा दीजिये ।
4. बहिरात्मापन सर्वथा हेय है, क्यों ?
5. मध्यम व उत्तम अंतरात्मा में अंतर बताइये ।

पाठ 5

प्रयोजनभूत तत्त्व

ज्ञायक- पिताजी ! आज मंदिर जी में प्रवचन में आ रहा था कि प्रयोजनभूत तत्त्वों को समझना अत्यंत आवश्यक है । ये प्रयोजन भूत तत्त्व क्या है ?

पिताजी- हाँ बेटा ! प्रयोजनभूत तत्त्वों को जानना, समझना अत्यंत आवश्यक है,क्योंकि इनके यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान बिना कभी भी आकुलता नष्ट नहीं होती व हमारा सच्चा सुख प्रगट नहीं होता है और दु:ख दूर करना तथा सुखी होना ही हमारा प्रयोजन है । अत: ऐसे तत्त्व जिनकी सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान बिना हमारा दु:ख दूर न हो सके और हम सुखी न हो सकें ,उन्हें प्रयोजभूत तत्त्व कहते हैं ।

ज्ञायक- पिताजी ! पर यह तत्त्व क्या होता है ?

पिताजी- बेटा ! तत्त्व अर्थात् वस्तु का सच्चा स्वरूप । जो वस्तु जैसी है , उसका जो भाव वही तत्त्व है । जैसे शक्कर का तत्त्व उसकी मिठास है, अग्नि का तत्त्व उसकी उष्णता है । वस्तु के स्वभाव को ही उसका तत्त्व कहते हैं।

ज्ञायक- ठीक ! समझ गया । ये तत्त्व कितने होते हैं ?

पिताजी- ये तत्त्व सात होते हैं। आचार्य उमा स्वामी देव के तत्त्वार्थसूत्र में कहा है :-

जीवाजीवास्त्रव बंध संवर निर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।।४ ।।

अर्थात् जीव, अजीव, आस्त्रव बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं

ज्ञायक- पिताजी, इनको अलग-अलग समझाइये न !

पिताजी- हाँ-हाँ, सुनो । ज्ञान दर्शन स्वभावी आत्मा को ही जीव तत्त्व कहते हैं तथा जो पदार्थ जीव नहीं है, परंतु जीव जैसे लगते हैं, ऐसे

देहादि तथा अपने से भिन्न समस्त परपदार्थ ही अजीव तत्त्व कहलाते हैं। पुद्गलादि पांच द्रव्य अजीव हैं। जीव -अजीव की सच्ची पहिचान अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अपनापन करने लायक केवल जीव तत्त्व ही है और अपने से भिन्न समस्त अजीव तत्त्व पर होने से उसका आश्रय छोड़ने लायक है।

इसी प्रकार, जिन मोह राग द्वेष भावों के निमित्त से कर्म आते हैं, उन मोह-राग द्वेष भावों को तो भावास्त्रव कहते हैं। उसके निमित्त से, ज्ञानावरणादि कर्मों का स्वयं आना द्रव्यास्त्रव है। आस्त्रव स्वयं दु:खमय तथा दु:ख का कारण है। उन्हें नष्ट किए बिना हम सुखी नहीं हो सकते हैं, अत: आस्त्रव की सच्ची पहचान आवश्यक है।

आत्मा का अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, पुण्य-पाप आदि विकारी भावों में रुक जाना सो भाव बंध है और उसके निमित्त से पुदगल का स्वयं कर्मरूप बंधना सो द्रव्यबंध है। बन्ध तत्त्व भी अत्यंत आकुलतामय होने से पूर्णत: नष्ट करना आवश्यक है। अत: उसका यथार्थ स्वरूप समझना आवश्यक है।

पुण्य-पाप दोनों ही परिणाम आस्त्रव-बंध तत्त्व में समाहित है,क्योंकि ये भी आत्मा के विकारी विभाव परिणाम हैं और आकुलतामय हैं तथा संसार के कारण हैं।

इसी प्रकार, निज आत्मा के लक्ष्य से आत्मा में शुद्धि उत्पन्न होना तथा विकारी भावों की उत्पत्ति रुकना भाव संवर है तथा उसी समय कर्मों का आना रुक जाना सो द्रव्य संवर है।

निजात्मा के लक्ष्य से शुद्धि की वृद्धि तथा अशुद्ध अवस्था का किंचित क्षय होना भाव निर्जरा है, तथा उसी समय द्रव्य कर्मों का अंशत: खिर जाना द्रव्य निर्जरा है।

दशा का प्रगट होना ही भाव मोक्ष है तथा कर्म का सर्वथा नाश हो जाना द्रव्य मोक्ष है ।

इनमें संवर-निर्जरा तत्त्व एकदेश सुखमय तथा सुख का कारण होने से प्रगट करने योग्य है, इसलिए इनका यथार्थ ज्ञान आवश्यक है तथा मोक्षतत्त्व एकमात्र पूर्ण सुखमय दशा होने से वही पूर्णत: उपादेय है अत: मोक्षतत्त्व का भी यथार्थ ज्ञान होना आवश्यक है ।

ज्ञायक- तो ये सातों ही तत्त्व समझना आवश्यक है ।

पिताजी- हां बेटा! पहले तो सातों तत्त्वों की सच्ची समझ आवश्यक है क्योंकि बिना समझे इनका सच्चा स्वरूप हमें ख्याल में नहीं आ सकता। इनका स्वरूप समझने पर हमें पता चलता है कि आस्रव-बंध तत्त्व दु:खमय होने से सर्वथा हेय, संवर तत्त्व सुखमय तथा साधक दशा में प्रगट करने के लिए उपादेय है तथा मोक्ष तत्त्व पूर्ण सुखमय होने से प्रगट करने के लिये पूर्ण उपादेय है। ऐसा समझकर अपने ज्ञानानंदमय निज आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान व लीनता ही उपादेय है, जिससे हमारी परिणति में चल रहे आस्रव-बंध का नाश होकर, सुखमय संवर-निर्जरा तत्त्व प्रगट होकर पूर्ण सुखी मोक्ष दशा प्रगट होती है ।

ज्ञायक- समझ गया पिताजी ! अब मैं भी प्रयोजनभूत तत्त्वों को समझने का अभ्यास करूंगा ।

प्रश्न-

1. तत्त्व किसे कहते हैं ?
2. जीव का प्रयोजन क्या है ?
3. प्रयोजनभूत तत्त्व किसे कहते है ? वे कितने होते है ।
4. आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा तत्त्व की परिभाषा दीजिये ।
5. द्रव्य मोक्ष व भाव मोक्ष में अंतर समझाइये ।

पाठ 6

हमारे तीर्थक्षेत्र

जिससे संसार समुद्र तिरा जाये अथवा जिसके आश्रय से भव्य जीव संसार सागर से पार उतरकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं, उसे तीर्थ कहते हैं । इस लक्षण से जिनेन्द्र भगवान प्रणीत वीतराग धर्म ही सच्चा तीर्थ है, जिसके आश्रय से अर्थात् धर्ममार्ग पर चलकर जीव मुक्ति को प्राप्त करता है, परंतु वह वीतरागी धर्म निज आत्मा के आश्रय से ही प्रगट होता है, अत: निश्चय से परम तीर्थ तो अपना निज भगवान आत्मा है। अपनी आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र से सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप परिणति प्रगट होती है, अतएव रत्नत्रय परिणत आत्मा को भी तीर्थ कहा गया है, क्योंकि रत्नत्रय को ही मुक्ति का कारण कहा गया है ।

रत्नत्रय रूप मुक्तिमार्ग का उपदेश चूंकि भगवान जिनेन्द्र की देशना में ही आता (खिरता) है, अत: भगवान की देशना को भी तीर्थ कहा जाता है । भगवान की देशना सभी जीवों के लिए हितकारक होने से इसे सर्वोदय तीर्थ कहा जाता है । इसके अतिरिक्त रत्नत्रय रूप परिणति प्रगट कर आत्म आराधना करके तीर्थंकर भगवान व मुनि भगवन्त जिन-जिन क्षेत्रों से मुक्ति पधारे, उन-उन क्षेत्रों को भी उपचार से तीर्थ कहा जाता है । तीर्थंकरों व मुनिभंगवतों के चरण रज से स्पर्शित होने से ये क्षेत्र स्वयं ही पवित्र व पूज्य हो जाते हैं । उन क्षेत्रों पर सहज ही तीर्थंकरों व मुनिराजों एवं उनकी आत्मसाधना के स्मरणपूर्वक हमें भी उनके समान ही निज आत्मा का आश्रय लेकर मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।

इस तरह परम तीर्थ निज आत्मा एवं निश्चय तीर्थ रत्नत्रय परिणत आत्मा है । भगवान की देशना मुक्तिमार्ग का परिचायक होने से तीर्थ है तथा उपचार से तीर्थंकरों-मुनिराजों की तपोभूमि, निर्वाण भूमि को भी तीर्थ कहा जाता है ।

जिन क्षेत्रों पर भव्य जीव आत्म साधना करके मुक्ति प्राप्त करते हैं, ऐसे क्षेत्रों को निम्न तीर्थ क्षेत्रों के रूप में वर्गीकृत किया गया है-

१. **निर्वाण क्षेत्र**- जिस स्थान से तीर्थंकर भगवान मोक्ष प्राप्त करते हैं, उसे निर्वाण क्षेत्र कहा जाता है । जैसे श्री सम्मेदशिखर जी, श्री कैलाश पर्वत, श्री चम्पापुर जी, श्री गिरनार जी एवं पावापुर जी।

२. **सिद्धक्षेत्र**-तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य केवली भगवान जिन क्षेत्रों से मुक्ति प्राप्त करते हैं, उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं, जैसे राजगृही, गुणावा, द्रोणगिरि, कुंडलगिरि , मथुरा चौरासी, पावागढ़, कुंथलगिरि, शत्रुजंय गिरि आदि ।

३. **अतिशय क्षेत्र**- जिन स्थानों पर तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप व ज्ञान कल्याणक होते हैं, उसे अतिशय क्षेत्र कहा जाता है । अयोध्या, हस्तिनापुर, श्रावस्ती, वाराणसी, कुंडलपुर, वैशाली आदि क्षेत्र ।

४. **सामान्य तीर्थ क्षेत्र** - इनके अतिरिक्त अनेक क्षेत्रों में भूगर्भ से प्राचीन जिन बिम्ब प्राप्त होते हैं। धर्म प्रभावना के निमित्त से कोई विशेष धार्मिक आयोजन होते हैं, उन क्षेत्रों को भी सामान्यपने तीर्थ क्षेत्र कहा जाता है जैसे महावीर जी, पद्मपुरा, तिजारा आदि क्षेत्र ।

उपर्युक्त सभी तीर्थ क्षेत्र हमारे पवित्र स्थल होने से हमारे लिए पूज्य हैं। इन सभी क्षेत्रों की भक्ति भाव से यात्रा करके दर्शन-भक्ति पूर्वक अपनी आराधना को बढ़ाना और मोक्षमार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करना हमारा कर्तव्य है ।

तीर्थयात्रा -क्यों, कैसे ? -

क्यों- तीर्थयात्रा का एकमात्र प्रयोजन सांसारिक कार्यों संबंधी राग को हटाकर, विषय भोगों से चित्त हटाकर भगवंतों के स्मरणपूर्वक अपनी आत्मा की आराधना करना या अपने मोक्षमार्ग को वृद्धिंगत करना है । तीर्थ क्षेत्रों पर जाने से सहज ही हमारे परिणामों में निर्मलता, कषाय की मंदता एवं धर्माराधना के लिए विशेष उत्साह जागृत होता है, अत: अन्य किसी लौकिक

प्रयोजन के लिए तीर्थयात्रा नहीं करनी चाहिए । कोई लौकिक मनोकामना की पूर्ति का परिणाम अशुभ भावमय होने से पापबन्ध का कारण है अत: इस उद्देश्य से कभी तीर्थ यात्रा नहीं करनी चाहिए । तीर्थ क्षेत्रों पर हमारे भगवंतों ने वीतरागता की प्राप्ति की थी, अत: हमारा उद्देश्य भी वीतरागता की प्राप्ति होना चाहिए ।

कैसे- १. तीर्थयात्रा सांसरिक उलझनों को छोड़कर करना चाहिए क्योंकि इन उलझनों के कारण मन एकाग्र न होने से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होगी।

२. तीर्थयात्रा पिकनिक टूर नहीं है अत: तीर्थ क्षेत्रों के आसपास के जंगलों, पर्वतों, वनों आदि स्थानों के भ्रमण से बचना चाहिए, क्योंकि ऐसे अशुभ परिणामों से पाप बंध ही होगा।

३. तीर्थ क्षेत्रों पर विषय भोग संबंधी एवं पापवर्धक समस्त परिणामों एवं क्रियाओं से बचना चाहिए, क्योंकि ऐसे भावों से तीव्र पापबंध होता है, जिनका फल जीव को लंबे समय तक भोगना पड़ता है । कहा भी है-

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं धर्मक्षेत्रे विनश्यति ।
धर्म क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।।

अर्थात अन्य सांसारिक जगहों पर किए गए पाप धर्मक्षेत्र में नष्ट होते हैं, परंतु धर्मक्षेत्र में किए गए पाप भविष्य में वज्र के समान भयंकर दु:खदायी होते हैं । अत: हमें तीर्थ क्षेत्रों पर कोई भी पाप क्रिया नहीं करनी चाहिए । तीर्थ क्षेत्रों पर रात्रि भोजन, अभक्ष्य भक्षण, घर-गृहस्थी के सामानों की खरीददारी आदि समस्त पापकर्मों से बचना चाहिए ।

प्रश्न-

1. तीर्थ किसे कहते हैं ?
2. निश्चय तीर्थ व व्यवहार तीर्थ में अंतर समझाइये ।
3. निर्वाण क्षेत्र किसे कहते हैं ?
4. तीर्थयात्रा का प्रयोजन समझाइये ।
5. तीर्थयात्रा कैसे करना चाहिये ।

पाठ 7

सम्यक् दर्शन

आत्मा का हित (कल्याण)

निराकुलता अर्थात् सच्चा सुख प्राप्त करने में है । मोक्ष ही सुख, स्वरूप है अत: हमें मोक्षमार्ग प्रगट करने का अभ्यास करना चाहिये । सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र की एकता को मोक्षमार्ग कहते है । सम्यक् दर्शन पूर्वक ही मोक्षमार्ग का आरंभ होता है, कहा भी गया है -

''मोक्षमहल की परथम् सीढ़ी''

या बिन ज्ञान चरित्रा ।

सम्यक्ता न लहे सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ।।

सम्यक्दर्शन अर्थात् यथार्थ श्रद्धान या सच्ची श्रद्धा । अरहन्त भगवान द्वारा बताये गये प्रायोजनभूत सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा को सम्यक्दर्शन कहा जाता है । सम्यक्दर्शन का निरूपण निम्न दो प्रकार से किया जाता है ।

१. निश्चय सम्यक्दर्शन - आत्मा की परद्रव्यों से भिन्नता का यथार्थ श्रद्धान अर्थात् आत्मा में अहं पना ही, निश्चय सम्यक्दर्शन है । कहा भी गया है **''परद्रव्यन तैं भिन्न तैं भिन्न आपमें रूचि सम्यकत्व भला है ।''** तथा आत्म श्रद्धांन सम्यक्दर्शनं ही वास्तविक सम्यक्दर्शन है ।

२. व्यवहार सम्यक्दर्शन - प्रयोजनभूत आतों तत्वों का यथावत भेदरूप अटल श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यक्दर्शन है । सच्चे देवशास्त्र गुण की यथार्थ श्रद्धा को भी व्यवहार से सम्यक्दर्शन कहा जाता है ।

निश्चय सम्यक्दर्शन पूर्वक ही व्यवहार सम्यक्दर्शन होता है ।

यह सम्यक्दर्शन शंका कांक्षा आदि आठ दोष, साठ मद, षट (छह) अनायतन व तीन मूढ़ता, इस प्रकार कुल २५ दोषों से रहित निर्दोष होता है। जिस प्रकार समस्त अंगों से परिपूर्ण मनुष्य ही शोभावान होता है, उसी प्रकार शंका, कांक्षा आठ दोषों के विपरीत निशंकित, नि:कांक्षित आदि सम्यक्दर्शन के आठ गुण प्रगट होते है, जिन्हें सम्यक्दर्शन के आठ अंग कहा जाता है। इनका संक्षिप्त स्वरूप निम्न है –

सम्यकदर्शन के आठ अंग

सम्यक्दर्शन निम्न आठ अंगों से सहित होता है। जैसे हीनाक्षर मंत्र (अपूर्ण मंत्र) विष की वेदना को नष्ट नहीं कर सकता, वैसे ही अंगरहित सम्यकदर्शन संसार का अभाव करने में समर्थ नहीं है।

1. **नि:शंकित** – जिनेंद्रदेव द्वारा कहे गये जीवादि तत्त्वों में शंका नहीं करना नि:शंकित अंग है।
2. **नि:कांक्षित**–धर्मसेवन करके उसके फल में सांसारिक सुखों की वांछा न करना नि:कांक्षित अंग है।
3. **निर्विचिकित्सा** – मुनिराज व अन्य धर्मात्मा जनों के मलिन शरीर को देखकर घृणा न करना निर्विचिकित्सा अंग है।
4. **अमूढ़दृष्टि**– कुदेव–कुगुरूओं द्वारा बताये मिथ्यामार्ग में न फंसना तथा मिथ्यामार्गों पर चलने वालों की प्रशंसा नहीं करना, सच्चे–झूठे तत्त्वों की परीक्षा करना अमूढ़दृष्टि अंग है।
5. **उपगूहन**– अपने गुणों को तथा पर के दोषों को ढांकना तथा अपने व पर के धर्म की वृद्धि करना वह उपगूहन अंग है।
6. **स्थितिकरण**– काम, क्रोध, लोभादि कषायों के तीव्र उदय से धर्म से चलित होते हुए स्व–पर को पुन: धर्म में स्थित करना स्थितिकरण अंग है।

7. **वात्सल्य**- धर्मात्मा व साधर्मी जनों पर गौ-वत्स सम स्नेह रखना, उनकी यथायोग्य विनय आदर करना, वात्सल्य अंग है ।

8. **प्रभावना**- अज्ञान अंधकार को दूर करके विद्या, बल,बुद्धि आदि के द्वारा सत्यमार्ग बतलाकर जिनशासन की महिमा प्रगट करना प्रभावना अंग है ।

उपर्युक्त आठ गुणों के विपरीत शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़ दृष्टित्व, अनूपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, प्रभावना - ऐसे इन आठ दोषों तथा ज्ञान, पूजा, कुल,जाति, बल, ऋद्धि, तप, प्रभुता - ऐसे आठ मद तथा षट्अनायतन व तीन मूढ़ता - कुल पच्चीस दोषों से रहित सम्यक्दर्शन को मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी कहा गया है । जीवादि तत्त्वों के अभ्यास पूर्वक ऐसे सम्यक्दर्शन को प्रगट करने का अभ्यास हमें करना चाहिए ।

षट्अनायतन व तीन मूढ़ताओं का स्वरूप निम्न है -

अनायतन - कुगुरू, कुदेव, कुधर्म और इन तीनों के सेवक - ये छहों अधर्म के स्थानक अनायतन कहलाते है ।

मूढ़ता - **देव मूढ़ता** - भय, आशा, स्नेह, लोभवश, रागी-द्वेषी देवों की सेवा करना अथवा वंदन-नमस्कार करना ।

पाखंडी मूढ़ता -रागी-द्वेषी और वस्त्रादि परिग्रहधारी, झूठे तथा कुलिंगी साधुओं की सेवा अथवा वंदन-नमस्कार करना ।

लोकमूढ़ता - धर्म समझकर जलाशयों में स्नान करना तथा रेत, पत्थर आदि के ढेर बनाना आदि कार्य ।

संयोग उदयानुसार होते है । सुख-दुख परिणमानुसार होता है, कार्य योग्यतानुसार होता है ।

पाठ 8

क्या आप जानते हैं ? द्रव्य-गुण-पर्याय

1. द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर- गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं, अर्थात अनंत गुणों का अखंड-अभेद पिण्ड ही द्रव्य है । द्रव्य अनादि, अनंत व स्वतंत होता है ।

2. गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो द्रव्य के संपूर्ण भाग में और उसकी संपूर्ण अवस्थाओं में पाया जावे उसे गुण कहते हैं।

3. पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर- गुणो के परिणमन को ही पर्याय कहते हैं । परिणमन अर्थात गुणों का कार्य या व्यापार।

4. गुण कितने होते हैं ?

उत्तर गुण दो प्रकार के होते हैं, १. सामान्य गुण २. विशेष गुण

5. सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो गुण सभी द्रव्यों में रहते हैं, उन्हें सामान्य गुण कहते हैं ।

6. विशेष गुण किसे कहते हैं ।

उत्तर- जो गुण सभी द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में ही रहते हैं, उन्हें विशेष गुण कहते हैं । विशेष गुणों के माध्यम से वस्तु का पृथकत्व सिद्ध होता है, विश्व में जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं, इसकी सिद्धि विशेष गुणों के माध्यम से होती है, पर पदार्थों से भेदज्ञान में कारणभूत ये ही गुण है।

7. सामान्य गुण कितने हैं ?

उत्तर सामान्य गुण अनंत है, परंतु छः मुख्य है-

1. अस्तित्त्व गुण , 2. वस्तुत्व गुण, 3. द्रव्यत्व गुण 4. प्रमेयत्व गुण, 5. अगुरूलघुत्व गुण, 6. प्रदेशत्व गुण ।

8. अस्तित्त्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता, और किसी से उत्पन्न भी नहीं होता , उस शक्ति को अस्तित्व गुण कहते हैं।

9. वस्तुत्व गुण किसे कहते हैं ।

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थक्रियाकारित्व विद्यमान हो अर्थात प्रयोजनभूत क्रिया होती रहती है ।उस शक्ति को वस्तुत्व गुण कहते हैं ।

10. द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्थाएं निरंतर बदलती रहती हैं, अर्थात द्रव्य निरंतर परिणमनशील हो, उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं, द्रव्यत्व गुण के कारण वस्तु को द्रव्य कहते हैं ।

11. प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय अवश्य बनता है, उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं ।

12. अगुरूलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है, अर्थात एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता है , एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता है, तथा द्रव्य में रहने वाले अनंत गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं हो जाते , उस शक्ति को अगुरूलघुत्व गुण कहते हैं ।

13. प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है, उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं ।

14. विशेष गुण कौन-कौन से है ?

उत्तर- 1. जीव द्रव्य- ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य, श्रद्धा आदि ।

2. पुदगल द्रव्य- स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि ।

3. धर्मद्रव्य- गति हेतुत्व आदि ।

4. अधर्मद्रव्य- स्थितिहेतुत्व आदि ।

5. आकाशद्रव्य- अवगाहन हेतुत्व आदि ।

6. कालद्रव्य - परिणमन हेतुत्व आदि ।

15. द्रव्य-गुण-पर्याय समझने से क्या लाभ है ?

उत्तर- हम सब जीव द्रव्य है अत: गुणों के पिंड हैं, ऐसा समझने से हम दीन-गुणहीन हैं, यह मान्यता निकल जाती है । अपने अस्तित्वादि गुणों का भान होने पर जन्म-मरण का भय समाप्त होकर यह विश्वास हो जाता है कि अपनी अनादि-अनंत ज्ञानमय सत्ता का आश्रय लेकर हम पूर्ण सुखी और पूर्ण ज्ञानी बन सकते हैं । सभी द्रव्य परिपूर्ण है यह बात समझ में आने पर उनके प्रति कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप अज्ञान का अभाव होता है।

सुख के लिये सामग्री नहीं, संतोष चाहिये ।
संतोष भी तत्त्वज्ञान बिना संभव नहीं है ।

पाठ 9

कथाखंड

अ-भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में तेइसवें तीर्थंकर हैं । आत्मसाधना कर पूर्ण वीतरागी भगवान बनने के पूर्व बालक पार्श्वकुमार का जन्म लगभग २८०० वर्ष पूर्व पौष कृष्ण एकादशी के दिन वाराणसी नगर के राजा विश्वसेन व उसकी पत्नी महारानी वामादेवी के घर हुआ था। वे जन्म से ही अन्य तीर्थंकरो के समान सुंदर, प्रतिभाशाली व अतुलबल संपन्न थे । उनका जन्मकल्याणक नगरवासियों के साथ-साथ देवों ने भी अत्यंत उत्साहपूर्वक मनाया था ।

बालक पार्श्वकुमार बचपन से ही वैराग्य संपन्न व धर्मरुचिवंत थे। उनका चित्त जगत से उदास रहता था, तथा वे सदैव आत्महित के संबंध में ही विचार किया करते रहते थे । युवावस्था में एक दिन उन्होंने देखा कि उनके नाना तापसी वेश में अपने चारों ओर लकड़ियां जलाकर पंचाग्नि तप कर रहे हैं। उन जलती लकड़ियों के बीच एक नाग-नागिन का जोड़ा भी जल रहा था । पार्श्वकुमार ने अपने अवधिज्ञान से यह जान लिया तथा अपने नाना को इस खोटे कार्य से मना किया। तापसी वेशधारी नाना ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया, किंतु लकड़ी फाड़कर देखने पर उसमें से अधजले नाग-नागिन निकले। पार्श्वकुमार ने उन नाग-नागिन को संबोधित किया और वे शांत भाव से मरण को प्राप्त होकर स्वर्ग में देव-देवी हुए, जिनके नाम धरणेन्द्र व पद्मावती थे।

पार्श्वकुमार का चित्त तो इस घटना से वैराग्यवंत हो गया, पर उनके तापसी वेशधारी नाना ने उनके प्रति द्वेषपूर्वक बैर बांध लिया । वास्तव में वह

पिछले अनेक भवों से वह (नाना का जीव) पार्श्वकुमार के जीव के साथ बैर निभाता चला आ रहा था, जिसके फल में उसे नरकों में भी जाना पड़ा था ।

इस घटना के थोड़े समय बाद जन्मदिवस के उत्सव के दिन जाति स्मरण ज्ञान होने पर पार्श्वकुमार के चित्त में वैराग्य प्रबल हो उठा और उन्होंने जिन दीक्षा धारण कर ली और वे उग्र तपश्चर्या में लीन हो गए ।

एक बार वे अहिक्षेत्र के वन में ध्यानस्थ थे, तब उनके नाना का जीव, जो मरकर देव हो गया था, वह वहां से निकला, मुनि पार्श्वनाथ को देखकर उसके पूर्व भव का बैर जागृत हो गया और उसने उनके उपर घोर उपसर्ग करना आरंभ कर दिया। परंतु पार्श्वनाथ मुनि अपनी आत्म साधना से डिगे नहीं । यद्यपि मुनि पार्श्वकुमार तो अपनी आत्मसाधना द्वारा अपने में पूर्ण सुरक्षित थे तथा उपसर्गों से सर्वथा अप्रभावित थे, परंतु उसी समय धरणेन्द्र-पद्मावती को उनकी रक्षा का विकल्प आया और उन्होंने यथाशक्य अपने विकल्प की पूर्ति भी की । इन्हीं उपसर्गों के बीच चैत्र कृष्ण चतुर्दशी के दिन मुनि पार्श्वकुमार आत्म-साधना को पूर्ण कर पूर्ण वीतरागी व पूर्णज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ बन गये । उसके बाद लगभग सत्तर वर्ष तक सारे भारतवर्ष में उनका विहार होता रहा । उनकी दिव्य देशना के माध्यम से लाखों जीवों ने मुक्तिमार्ग प्राप्त किया । अंत में श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन श्री सम्मेदशिखर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया अर्थात वे इस दिन अरहन्त भगवान से सिद्ध भगवान बन गये ।

विषय भोग दिखते तो सरल हैं, परंतु पड़ेंगे बहुत महंगे ।

न्याय से कमाओ, विवेक से खर्च करो ।

(a) श्रीभूति पुरोहित की कथा

(चोरी पाप का फल)

किसी समय सिंहपुर नामक नगर में राजा सिंहसेन राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम रामदत्ता था । राजा धर्मपरायण और बुद्धिमान थे । रानी भी चतुर थी । राजा के राजपुरोहित का नाम श्रीभूति था, वह था तो लोभी और लोगों को ठगने वाला, परंतु मायचारी से उसने अपना नाम सत्यघोष प्रसिद्ध करवा रखा था और इसी कारण चारों ओर उसकी ख्याति थी कि वह कभी झूठ नहीं बोलता । लोग इसकी बातों पर विश्वास करते थे ।

एक बार उसकी ख्याति को सुनकर पद्मखंडपुर निवासी एक व्यापारी समुद्रदत्त ने इसे अपने अत्यंत पांच कीमती रत्न रखने को दिए तथा स्वयं व्यापार करने के लिए विदेश चला गया । वापिस आते समय समुद्रदत्त का जहाज पानी में डूब गया परंतु समुद्रदत्त किसी तरह बचकर वापिस आ गया और उसने श्रीभूति से अपने पांच रत्न वापिस मांगे । श्रीभूति के मन में उन रत्नों को लेकर पहले ही लोभ उत्पन्न हो चुका था। उसने समुद्रदत्त को यह कहकर रत्न देने से मना कर दिया कि उसने उसके पास कोई रत्न नहीं रखवाये थे और वह असत्य बोल रहा है। नगर जनों ने भी श्रीभूति की बातों पर विश्वास किया । श्रीभूति ने संपूर्ण नगर में यह प्रचारित करवा दिया कि जहाज डूब जाने व दरिद्रता के कारण समुद्रदत्त पागल हो गया है और पागलपन में वह कुछ भी चिल्लाता रहता है। समुद्रदत्त सारे नगर में घूम-घूमकर एक ही बात कहता था कि श्रीभूति ने मेरे पांच रत्न ले लिए हैं, परंतु कोई उसकी बातों पर विश्वास नहीं करता था, वह रोज रात को राजा के महल के पीछे स्थित पेड़ पर बैठकर सारी रात यह बात चिल्लाता रहता था ।

कुछ महीनों बाद रानी रामदत्ता को यह विचार आया कि समुद्रदत्त रोज रात को एक ही बात बार-बार चिल्लाता है अवश्य इसमें कोई रहस्य है । उसने राजा से कहा और समुद्रदत्त को राजा ने महल में बुलवाकर सारी बातें पूंछी। समुद्रदत्त ने सारी बातें यथार्थरूप में राजा-रानी के सामने कह दी। राजा इस चिंता में पड़ गया कि सत्यता का पता कैसे लगाया जावे तब रानी रामदत्ता ने सत्य का पता लगाने की जिम्मेदारी स्वयं ले ली ।

एक दिन रानी रामदत्ता ने श्रीभूति पुरोहित को अपने महल में बुलाकर उसका बहुत सत्कार किया और उसे अपने साथ चौपड़ खेलने के लिए कहा। श्रीभूति मना नहीं कर सका। रानी ने चतुराईपूर्वक खेलते हुए श्रीभूति की मुद्रिका तथा उसका यज्ञोपवीत (जनेउ) जीत लिया । इन दोनों वस्तुओं को अपनी दासी को देकर रानी ने श्रीभूति पुरोहित के घर भेजा व दोनो वस्तुएं दिखाकर उसकी पत्नी से समुद्रदत्त का रत्नपिटारा बुलवा लिया । श्रीभूति को उसकी जीती हुई वस्तुएं वापिस देकर महल से विदा कर दिया । इसके बाद राजा ने श्रीभूति के घर से आये हुये रत्न पिटारे में अपनी ओर से अनेक रत्न मिलाये । फिर समुद्रदत्त को बुलवाकर उसी रत्नपिटारे से अपने रत्न छांटने को कहा, समुद्रदत्त ने अपने पांच रत्न तुरंत ही निकाल लिए । सत्य का पता लगते ही श्रीभूति पुरोहित को तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया और उसे राज दरबार में पेश किया गया । सारी घटना का पता चलने पर राजमंत्रियों ने श्रीभूति के लिए तीन दंड में से कोई एक निश्चित किए-

1. वह मल्ल के तीस मुक्के खाए, या
2. वह तीन थाली गोबर खाए, या
3. उसका सर्वस्व हरण कर उसे देश निकाला दे दिया जाए ।

श्रीभूति पुरोहित से स्वयं अपनी इच्छानुसार कोई एक दंड चुनने के लिए कहा गया। उसने तीन थाली गोबर खाना स्वीकृत किया, परंतु एक थाली

भर भी न खा सका, तब उसने मल्ल के मुक्के खाना स्वीकार किया, परंतु बारह मुक्के पड़ते ही वह अचेत हो गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गए । तीव्र आर्तध्यान पूर्वक मरण को प्राप्त होकर वह राजा के कोषालय में ही आगन्धन नामक महाविषधर सर्प हुआ, उसके पश्चात मर कर वह दुर्गति में चला गया । उसे अपनी करनी का पल मिला ।

शिक्षा- कभी भी न तो किसी की वस्तु चोरी करने का भाव करना चाहिए और न ही असत्य बोलने का परिणाम रखना चाहिए । इन दोनों ही पापों का फल अत्यंत खोटा होता है ।

ध्यान दें !!!

1. जगत में श्रेष्ठ कौन है ?

उत्तर - **जो विषय-कषाय को जीतता है ।**

2. कायर और दीन कौन है ?

उत्तर - **जो इन्द्रिय-मद मेंटने को बलहीन है ।**

3. अतिमूर्ख कौन है ?

उत्तर - **जो विषय सुख की वांक्षा करे ।**

4. आँख का अंधा कौन है ?

उत्तर - **जिसकी दृष्टि में देव-कुदेव तथा सुगुरू-कुगुरू समान है ।**

5. गूंगा कौन है ?

उत्तर - **जो असत्य बोलता है ।**

6. भुजा होने पर भी करहीन कौन है ?

उत्तर - **जिन्होंने पूजा नहीं की और पात्रदान नहीं दिया ।**

तीर्थवंदना

तीर्थ वन्दना मंगलकारी, तीर्थ वन्दना आनंदकारी ।।
महाभाग्य से हो जिनदर्शन, महाभाग्य से चरण स्पर्शन ।
भाव विशुद्धि हो सुखकारी, तीर्थवन्दना मंगलकारी ।।
प्रभु की शांत छवि को निरखे, परमतत्त्व को अब हम परखें ।
शाश्वत ज्ञायक प्रभु अविकारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
आत्म साधना की यह भूमि, धर्माराधन की यह भूमि ।
भायें तत्त्व -भावना प्यारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
यहां संतो की याद सु आये, मुक्तिमार्ग में मन ललचाये ।
छूटे जग प्रपंच दुखकारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
अहो ! जिनेश्वर क्या कहते हैं, सदा सहज निज में रहते हैं ।
हम भी होवें शिव मगचारी तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
हो सम्यक् श्रद्धान हमारा, हो निर्मल सद्ज्ञान हमारा ।
होवे सम्यक् चारित्रधारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
नहिं कामना भोगों की हो, नहीं याचना वैभव की हो ।
प्रभु सम प्रभुता होय हमारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।
भक्तिभाव से प्रभु गुण गावें, प्रभु को हृदय माहि बसावें ।
सफल वन्दना होय हमारी, तीर्थ वन्दना मंगलकारी ।।

पढ़ना

बच्चों नित्य नियम से पढ़ना,
हित पर दृष्टि रखकर पढ़ना ।।
आदर और विनय से पढ़ना ।
पढ़कर आना, आकर पढ़ना ।।
समझ-समझकर के तुम पढ़ना,
पिछला पाठ याद तुम रखना ।।
प्रातः जल्दी उठकर पढ़ना ।
समयचक्र का पालन करना ।।
तजने योग्य सहज ही तजना,
भजने योग्य सहज ही भजना ।।
पढ़कर के आतमहित करना,
देशधर्म की उन्नति करना ।।
नाम गुरु का नहीं छिपाना,
विद्यालय का नाम बढ़ाना ।।

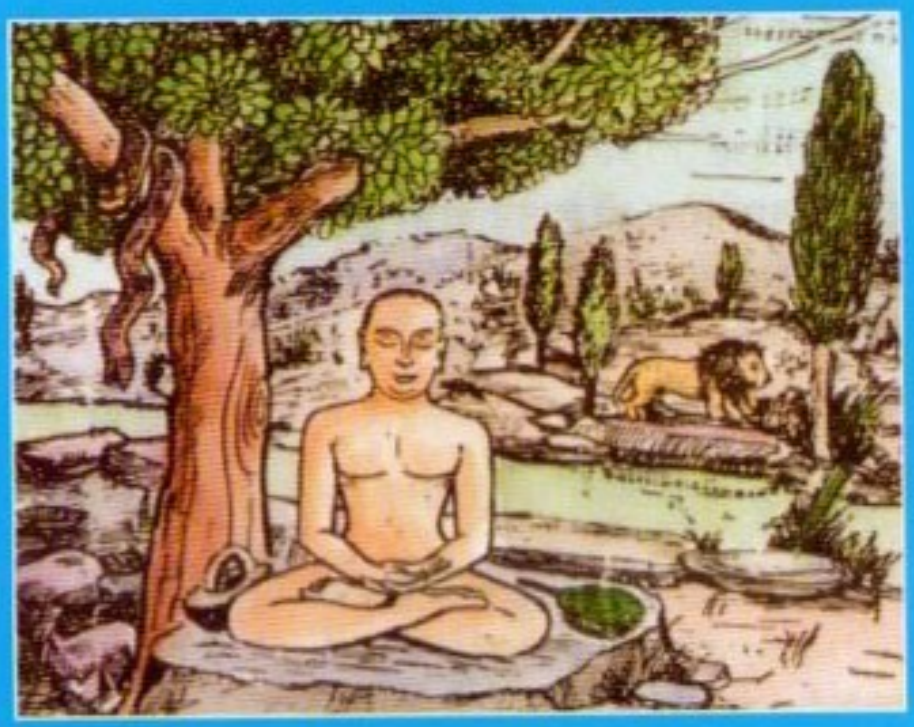

धनि मुनिराज हमारे हैं.....

धनि मुनिराज हमारे हैं, धनि मुनिराज हमारे हैं ।।
सकल प्रपंच रहित निज में रत, परमानन्द विस्तारे हैं ।।
निर्मोही रागादि रहित हैं, केवल जाननहारे हैं ।।
घोर परिषह उपसर्गों को, सहज ही जीतन हारे हैं ।
आत्मध्यान की अग्निमाहि जो, सकल कर्ममल जारे हैं ।।
साधैं सारभूत शुद्धातम, रत्नत्रय निधि धारे हैं ।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, काम सुभट संहारे हैं ।।
सहज होय गुणमूल अठाईस, नग्न रूप अविकारे हैं ।
वनवासी व्यवहार कहत हैं, निज में निवसन हारे हैं ।।